

साकत सिउ करि उलटी रे ॥

बाबा देखै धिआन धरि जलती सभि पृथिवी दिसि आई ।

बाझहु गुरू गुबार है है है करदी सुणी लुकाई । (वा.भा.गु. 1@4)

सृष्टि की पुकार सुनकर, अकाल पुरुष ने 'धन गुरू नानक' के रूप में अपने आप को प्रकट किया । इस जलते-सड़ते संसार में इलाही-राग द्वारा, ईश्वरीय बाणी गाकर, कृपा तथा ठंड की वर्षा की तथा तपती-जलती सृष्टि को शीतलता प्रदान की । यह गुरू साहिब की स्नेहमयी कृपा तथा महान ईश्वरीय करामात थी, जिसने संसार में 'उलटी गंगा' बहाकर, धरती की तपिश को शांत किया और कुम्हलाए हुए हृदयों को शीतलता प्रदान कर प्रफुल्लित किया ।

गुरू बाबे के पास वह कौन सी करामात थी, जिसके द्वारा कलयुग में सतयुग बना ?

यह श्री गुरू गरीब निवाज द्वारा उच्चारित 'धुर की बाणी' (ईश्वरीय बाणी) थी, जिसने दानव को देवता तथा चोरों व ठगों को साधुओं में बदल कर रख दिया ।

सांसारिक जीव कर्मबद्ध हैं । आत्मिक अनुभवी ज्ञान न होने के कारण, सभी जीव बिना किसी सही दैवीय लक्ष्य के, अंधाधुंध माया के 'भीषण-सागर' में गोते खा रहे हैं । सृष्टि झूठे धंधों में पलच-पलच कर अमूल्य जीवन नष्ट करती जा रही है तथा इस भव-सागर में 'किञ्चु न बुझै किञ्चु न सुझै' वाला दुखदायी जीवन व्यतीत कर रही है ।

गुरू साहिब ने संसार के इस दयनीय पतन की तस्वीर यूँ खींची है :-

खोटे कउ खरा कहै खरे सार न जाणै ॥

अंधे का नाउ पारखू कली काल विडाणै ॥

सूते कउ जागतु कहै जागत कउ सूता ॥

जीवत कउ मूआ कहै मूएँ नही रोता ॥

आवत कउ जाता कहै जाते कउ आइआ ॥
 पर की कउ अपुनी कहै अपुनो नही भाइआ ॥
 मीठे कउ कउड़ा कहै कडए कउ मीठा ॥
 राते की निंदा करहि ऐसा कलि महि डीठा ॥
 चेरी की सेवा करहि ठाकुरु नही दीसै ॥
 पोखरु नीरु विरोलीए मारवनु नही रीसै ॥

(पृ: 229)

काच बिहाइन कंचन छाइन बैरी संगि हेतु साजन तिआगि खरे ॥
 होवनु कउरा अनहोवनु मीठा बिरिआ महि लपटाइ जरे ॥

(पृ: 823)

हमने इस मायकी संसार में जन्म लिया है, इसलिए इसकी 'परत' तथा 'रंगत' से बचना असम्भव है ।

लिव छुड़की लगी त्रिसना माया अमरु वरताइआ ॥

(पृ: 921)

इस पंक्ति अनुसार यह संकेत मिलता है, कि माता के उदर में जीव के अंदर कोई 'जीवन रौं' चल रही थी, वह थी निरंकार के देश की लगन, 'इलाही लिव'। परन्तु जन्म लेते ही वह जीवन-रौं बदल गई तथा मायकी मंडल में प्रवेश करते ही माया ने प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया ।

जब जीव पर माया की 'परत' चढ़ जाती है या 'कलम' लग जाती है (माया का रंग चढ़ जाता है) तो उसमें मायकी मंडल के सभी 'अवगुण' प्रवेश हो जाते हैं । ज्यों-ज्यों माया की यह 'रंगत' गाढ़ी होती जाती है, त्यों-त्यों वह अपनी 'वास्तविकता' अथवा आत्म मंडल को 'भूलता' तथा उससे 'विमुख' होता जाता है । इस प्रकार जीव माया में 'खचित' होता जाता है ।

इन्हि माया जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे ॥

(पृ: 857)

हमारा वर्तमान मायकी 'जीवन वेग' हमें दुखों के अथाह समुद्र की ओर ले जा रहा है तथा हम दुखों के सागर में अंधाधुंध बहते जा रहे हैं ।

गुरू बाबे ने संसार के इस दयनीय पतन को अनुभव करके, गुरुबाणी द्वारा सही आत्मिक शिक्षा दी ।

मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ॥

(पृ: 12)

आपु छोडि बेनती करहु ॥

साधसंगि अगनि सागरु तरहु ॥

(पृ: 295)

तरिओ सागरु पावक को जउ संत भेटे वड भागि ॥

(पृ: 701)

भउजलु बिखवमु असगाहु गुर सबदी पारि पाहि ॥

(पृ: 962)

उपरोक्त विचारों को भली भांति समझ कर, अपनी **जीवन-दिशा को बिना** बदले, हम कदाचित **दुखों से बच नहीं सकेंगे** तथा न ही कभी अटल सुख की प्राप्ति हो सकेगी । जैसे-जैसे सत्संग तथा प्रभु सिमरन द्वारा हमारे दैनिक **जीवन का 'सुख' बदलेगा**, वैसे-वैसे हमारे मन-वचन-कर्म में **परिवर्तन आता जायेगा** । यहाँ तक कि हमारी 'मैं-मेरी' का '**अहम्-भाव**' बिल्कुल समाप्त हो जाएगा ।

गुरू वचन है :-

उलट भई जीवत मरि जागिआ ॥

सबदि रवे मनु हरि सिउ लागिआ ॥

(पृ: 221)

'**जीवत-भाव**' से मर कर, जीव को '**जागृति**' प्राप्त होती है तथा '**शब्द**' में **रंगे जाने पर 'उल्टी खेल' घटती है** । इस सम्बन्ध में भक्त कबीर साहिब का कथन है -

जम ते उलटि भए है राम ॥

दुख बिनसे सुख कीओ बिसराम ॥

बैरी उलटि भए है मीता ॥

साकत उलटि सुजन भए चीता ॥

अब मोहि सरब कुसल करि मानिआ ॥

सांति भई जब गोबिदु जानिआ ॥ रहाउ ॥

तन महि होती कोटि उपाधि ॥

उलटि भई सुख सहजि समाधि ॥

आपु पछानै आपै आप ॥

रोगु न बिआपै तीनौ ताप ॥

अब मनु उलटि सनातनु हूआ ॥

तब जानिआ जब जीवत मूआ ॥

कहु कबीर सुखि सहजि समावउ ॥

आपि न डरउ न अवर डरावउ ॥

(पृ: 326)

सत्संग में दम-ब-दम '**गुरु-शब्द**' के निरंतर अभ्यास द्वारा जीव का स्वभाव तथा व्यवहार ही '**पलट**' जाता है । सतिगुरू की कृपा द्वारा जब '**सत्-चित्त-आनन्द**' गोबिंद जी के साथ, जीव का **अंतर-आत्मा में सम्पर्क** होता है, तब शांति

ही शांति, शीतलता ही शीतलता छा जाती है तथा अकथनीय आनन्द की प्राप्ति होती है ।

इस प्रकार जीव का बाहरी व्यवहार 'बुरा नहीं सभ भला ही है रे' वाला हो जाता है । पहले पहल यह अवस्था स्थायी नहीं रहती, परन्तु जैसे-जैसे 'गुरू शब्द' में मन लीन होता जाता है, वैसे-वैसे स्थायी दृढ़ अवस्था प्राप्त होती जाती है तथा जीव 'सहज-सुख' में टिका हुआ, किसी उमाह, उत्साह तथा 'चढ़दी कला' में विचरण करता है । फिर तो घूमते-फिरते, उठते-बैठते 'सहज-आनन्द' बना रहता है । जैसे गुरू वचन है -

साइर सपत भरे जल निरमलि उलटी नाव तरावै ॥

बाहरि जातौ ठाकि रहावै गुरमुखि सहजि समावै ॥ (पृ: 1332)

इस प्रकार आनन्द की प्राप्ति रोम-रोम में अनुभव होती रहती है । 'अपना अस्तित्व' -

मीठा-मीठा

सुन्दर-सुन्दर

ठंडा-ठंडा

हल्का-हल्का

प्यारा-प्यारा

स्नेह पूर्ण

खिला-खिला

अनुभव होता है ।

यहाँ तक कि 'अहम् भाव' बिल्कुल समाप्त हो जाता है तथा 'तूं-तूं करता तू हूँआ' की अवस्था व्याप्त होती है, सब चिंता-फिकर दूर हो जाते हैं तथा अकथनीय सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है ।

गुरू पंचम पातशाह जी का हुकुम है -

जिना बात को बहुत अंदेसरो ते मिटे सभि गइआ ॥

सहज सैन अरु सुखमन नारी ऊध कमल बिगसइआ ॥

देखहु अचरजु भइआ ॥

जिह ठाकुर कउ सुनत अगाधि बोधि सो रिदै गुरि दइआ ॥ रहाउ ॥

जोइ दूत मोहि बहुतु संतावत ते भइआनक भइआ ॥

करहि बेनती राखु ठाकुर ते हम तेरी सरनइआ ॥

(पृ : 612)

हम संसार के व्यवहार की ओर देखें तो दैनिक जीवन से निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आते हैं, कि संसार में –

1. लेकर खुश होने वाले सभी, परन्तु **‘हथहु दे कै भला मनावै’** वाला कोई विरला।

2. कथनी वाले **‘ज्ञानी’** सभी, परन्तु आचरण वाला कोई विरला ।

जगि गिआनी विरला आचारी ॥

जगि पंडितु विरला वीचारी ॥

(पृ: 413)

3. खाने वाले सभी, परन्तु दूसरों को **‘खिलाने’** वाला कोई विरला ।

4. **‘दूसरों के अवगुण’** देखने वाले सभी, परन्तु **अपने अवगुणों को देखने वाला कोई विरला ।**

आपनड़े गिरीवान महि सिरु नीवां कर देखु ॥

(पृ: 1378)

5. लोगों के अवगुणों की **‘चर्चा’** करने वाले सभी, परन्तु **‘देखकर अनदेखा’** तथा **‘सुनकर अनसुना’** करने वाला कोई विरला ।

साझ करीजै गुणह केरी छोडि अवगण चलीऐ ॥

(पृ: 766)

6. कड़वा तथा **फीका बोलने** वाले सभी, **‘मीठा’** बोलने वाला कोई विरला ।

7. **‘निंदा’** करने वाले सभी, परन्तु **अपनी निंदा सुनकर खुश** होने वाला कोई विरला ।

निंदउ निंदउ मो कउ लोगु निंदउ ॥

निंदा जन कउ खरी पिआरी ॥

(पृ: 339)

8. **‘बुरा’** करने वाले बहुत, परन्तु **बुरे का भला करने वाला** कोई विरला ।

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ ॥

(पृ: 1382)

9. लोगों से **‘गिले-शिकवे’** करने वाले सभी, परन्तु **‘रोसु न काहू संग करहु आपन आपु बीचारि’** वाला कोई विरला ।

10. **‘ईर्ष्या-द्वेष’** की **गाँठे बाँधने** वाले सभी, **‘पर का बुरा न राखहु चीत’** वाला कोई विरला ।

11. **‘डंडी मारने वाले’** बहुत, परन्तु **‘पूरा तोलने’** वाला कोई विरला ।

12. 'डंग टपाऊ' (टाइम बिताने वाले) सभी, परन्तु 'फर्ज़-ड्यूटी' निभाने वाला कोई विरला ।
13. 'आग-लगाने' वाले सभी, परन्तु 'बुझाने' वाला कोई विरला ।
14. दिल के शीशे को 'तोड़ने' वाले सभी, 'जोड़ने' वाला कोई विरला ।
हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे ॥ (पृ : 1384)
15. खिले हृदय को 'मुरझाने' वाले सभी, परन्तु मुरझाए हुए हृदय को 'खिलाने' वाला कोई विरला ।

बात क्या है, चारों ओर –

ठगना-ठगाना
 शिश्त-खेरी
 काम की चोरी
 टाल-मटोल
 बहने-बाजी
 दगा
 फसेख

का बोलबाला तथा आचरण है ।

वह कौन सा अवगुण है, जो हम में नहीं है ! मन-वचन-कर्म से दिन रात 'कूड़ फिरै परधान वे लालो' वाला जीवन व्यतीत कर रहे हैं । हमारी सामाजिक दशा तो नरक से भी बुरी हो चुकी है ।

गुरू साहिब ने हमें –

'सच्चे-सौदे' करने सिखलाये ।
 'तेरा-तेरा' तोलना सिखलाया ।
 'हथहु दे कै भला मनाउणा' सिखलाया ।
 'अणहोंदा आप वंडाउण' की विधि बताई ।

गुरू साहिब ने अत्याचार रोकने के लिए बलिदान देकर, हमें यह सिखलाया कि वास्तविक जीवन तो 'दूसरों' के लिए जीना और दूसरों के लिए मरना ही है । हम गुरू साहिब के दर्शाये 'गाडी राह' (नियत पथ) से दूर जा रहे हैं ।

आईए ! गुरू साहिब की बाणी पर विचार करते हुए, अपने जीवन को 'पल्टा' दें और उत्तम-श्रेष्ठ मार्ग पर चलें ।

ऐसी 'विपरीत खेल' साथ संगति में विचरण करते हुए, 'गुरू शब्द' के अभ्यास द्वारा, हरि-रस में रंगे जाने से ही प्राप्त होती है -

ऐसो हरि रसु बरनि न साकउ

गुरि पूरै मेरी उलटि धरी ॥

(पृ: 823)

हमारी 'मति' में केवल उस समय परिवर्तन आना शुरू होता है, जब हम अपने मन का 'रख' संसार से मोड़कर 'गुरू' की ओर करते हैं। जैसे-जैसे हमारे मन का 'रख' गुरू की ओर मुड़ता जाता है, वैसे-वैसे हमारे भीतर गुरू के गुण प्रवेश होते जाते हैं।

गुरमुखि होवै सु पलटिआ हरि राती साजि सीगारि ॥

(पृ: 785)

परन्तु हमारी दशा दयनीय है। भ्रम की अज्ञानता के कारण हमें गुरू अपने साथ अंग-संग होते हुए भी अनुभव नहीं होता तथा हम अन्धा-धुंध 'रसातल' की ओर बहते जा रहे हैं।

ऐसे काहे भूलि परे ॥

करहि करावहि मूकरि पावहि पेखत सुनत सदा संगि हरे ॥ रहाउ ॥

काच बिहाइन कंचन छाडन बैरी संगि हेतु साजन तिआगि खरे ॥

होवनु कउरा अनहोवनु मीठा बिरिआ महि लपटाइ जरे ॥

अंध कूप महि परिओ परानी भरम गुबार मोह बंधि परे ॥

कहु नानक प्रभ होत दइआरा गुरु भेटै काढै बाह फरे ॥ (पृ : 823)

अकाल पुरुष के चरण-कमलों का आनंद छोड़कर, मनुष्य छाया रूपी माया को एकत्रित करने में जुटा, दिन-रात 'पैसा-पैसा' कूक रहा है। काम, क्रोध आदि जो इसके 'शत्रु' हैं उनसे प्यार तथा सत्, संतोष, दया, सेवा-भाव, जीवन न्यौछावर करना आदि दैवीय-गुण, जो इसके 'मित्र' हैं, उनसे विमुख हो गया है। 'यह जग मीठा, अगला किन डीठा' अनुसार सदा सहायक परमेश्वर को छोड़कर, 'क्षण भंगुर' जीवन को मीठा मानकर, विष-रूपी माया से लिपटा हुआ ईश्वर से 'विमुख' हो रहा है। भ्रम के आवरण तथा मोह के बंधनों के कारण अंधकूप में गोते खा रहा है।

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ॥

(पृ: 133)

सतिगुरू जी, इस 'भीषण अगाध भव-सागर' से बचने का मार्ग 'साध-संगति' का सहारा ही बताते हैं, जहां हमें 'नाम' की ओट प्राप्त होती है। 'साध-संगति

कै अंचलि लावहु बिखम नदी जाइ तरणी' की प्रार्थना सिखलाई है तथा **नाम का 'आश्रय'** (सहारा) लेने का उपदेश देते हैं :-

रे मन ओट लेहु हरि नामा ॥ (पृ: 901)

जीअरे ओल्हा नाम का ॥

अवुरु जि करन करावनो तिन महि भउ है जाम का ॥ (पृ: 211)

जब जीव के मन का 'रुख' आत्मा की ओर होता है तो उसे 'गुरु-मुख' कहा जाता है ।

जब जीव के मन का 'रुख' अपनी आत्मा से विमुख हो कर अथवा 'ईश्वर को भूल' कर, माया में खचित हो जाता है - तब उसे 'मन-मुख' कहा जाता है ।

से मनमुख जो सबहु न पछाणहि ॥

गुर के भै की सार न जाणहि ॥

(पृ: 1054)

जब जीव परमात्मा को 'भूल' कर, उसके 'अस्तिस्व' से ही इन्कार करता है तथा अपनी झूठी 'मैं-मेरी' के भ्रम-भुलाव में 'घमण्डी' बना रहता है तो उसे 'साकत' कहा जाता है । इस प्रकार 'साकत' की मानसिक अवस्था 'गुरुमुख' की आत्मिक अवस्था के बिल्कुल विपरीत है ।

खादा पैनदा मूकरि पाइ ॥ तिस नो जोहहि दूत धरम राइ ॥

तिसु सिउ बेमुखु जिनि जीउ पिंडु दीना ॥

कोटि जनम भरमहि बहु जूना ॥ रहाउ ॥

साकत की ऐसी है रीति ॥ जो किछु करै सगल बिपरीति ॥

जीउ प्राण जिनि मनु तनु धारिआ ॥

सोई ठाकुरु मनहु बिसारिआ ॥

(पृ: 195)

कउडी बदलै तिआगै रतनु ॥ छोडि जाइ ताहू का जतनु ॥

सो संचै जो होछी बात ॥ माया मोहिआ टेढउ जात ॥

अभागे तै लाज नाही ॥

सुख सागर पूरन परमेसरु हरि न चेतिओ मन माही ॥ रहाउ ॥

अंम्रितु कउरा बिखिआ मीठी ॥ साकत की बिधि नैनहु डीठी ॥

कूड़ि कपटि अंहकारि रीझाना ॥ नामु सुनत जनु बिछूअ डसाना ॥

माया कारणि सद ही झूरै ॥ मनि मुखि कबहि न उसतति करै ॥
निरभउ निरंकार दातारु ॥

तिसु सिउ प्रीति न करै गवारु ॥ (पृ: 892&93)

साकत मुठे दुरमती हरि रसु न जाणंन्हि ॥

जिन्ही अंभितु भरमि लुटाइआ बिखु सिउ रचहि रचंन्हि ॥

दुसटा सेती पिरहड़ी जन सिउ वादु करंन्हि ॥ (पृ: 854)

हमारे कमजोर तथा परिवर्तनशील 'मन' पर संगति का प्रभाव होना अवश्य
या स्वाभाविक है ।

जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फलु खाइ ॥ (पृ: 1369)

इसीलिए गुरबाणी में जीव को ऐसे 'मनमुख' अथवा 'साकत' की 'संगति' से
बचने की यूँ प्रेरणा की गई है -

ते साकत चोर जिना नामु विसारिआ

मन तिन कै निकटि न भिटीऐ ॥ (पृ: 170)

कबीर मारी मरउ कुसंग की केले निकटि जु बेरि ॥

उह झूलै उह चीरीऐ साकत संगु न हेरि ॥ (पृ: 1369)

कबीर साकत संगु न कीजीऐ दूरहि जाईऐ भागि ॥

बासनु कारो परसीऐ तउ कछु लागै दागु ॥ (पृ: 1371)

इस 'विपरीत खेल' को खेलने के लिए 'ग्रहस्थ-उदास' जीवन व्यतीत करते
हुए, 'लोक सुखी परलोक सुहेले' बनाना है ।

उलटी रे मन उलटी रे ॥

साकत सिउ करि उलटी रे ॥ (पृ: 535)

गुरबाणी में दर्शाये गये गुरू-उपदेशों का पालन करते हुए, अटल सुख की प्राप्ति
करनी है तथा 'बेगमपुरा' के निवासी बनकर, खुशी-खुशी दरगाह जाना है । ताकि
हम पर गुरू साहिब के निम्नलिखित वचन सही अर्थों में लागू हो सकें -

मन महि मनु उलटो मरै जे गुण होवहि नालि ॥ (पृ: 935)

बीज मंत्रु लै हिरदै रहै ॥

मनूआ उलटि सुंन महि गहै ॥ (पृ: 974)

गुर परसादी उलटी होवै गिआन रतनु सबदु ताहा हे ॥ (पृ: 1056)

सुरती कै मारगि चलि कै उलटी नदरि प्रगासी ॥ (पृ: 1329)

दूसरी ओर 'मनमुख' या साकत की अवस्था से परिवर्तित हो कर, 'गुरुमुख' बनने के लिए, उत्तम दैवीय संगति अथवा 'साधसंगति' करने का गुरुबाणी में ताकीद भरा हुकुम है। साध संगति करते हुए हमारी अंतर-आत्मा में अकाल पुरुष के प्रति -

श्रद्धा-भावना बढ़ती जाएगी,
मायकी रंगत कम होती जाएगी तथा
धीरे-धीरे हमारी अवस्था 'साकत' से
बदलकर 'गुरुमुख' बन जाएगी।

गुरुबाणी में इस बात की यँ प्रेरणा दी गई है -

साधसंगि होइ निरमला नानक प्रभ कै रंगि ॥ (पृ: 297)

महा पवित्र साध का संगु ॥

जिसु भेटत लागै प्रभ रंगु ॥ (पृ: 392)

महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता ॥

मैलु खोई कोटि अघ हरे निरमल भए चीता ॥ (पृ: 809)

गई गिलानि साध कै संगि ॥

मनु तनु रातो हरि कै रंगि ॥ (पृ: 892)

जनम जनम की हउमै मल लागी

मिलि संगति मलु लहि जावैगो ॥ (पृ: 1309)

करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत ॥

(पृ: 631)

एक ओर, आत्मिक मंडल में -

सत्

हुकुम

नाम

प्यार

निर्मलता

संतोष

दया

धैर्य

क्षमा

सेवा-भाव

मैत्री-भाव
श्रद्धा-भावना
नम्रता
शांति

आदि, के दैवीय गुणों का प्रवेश तथा प्रकटाव है ।

दूसरी ओर, मायकी मंडल में –

अज्ञानता
भ्रम
अहंकार
काम
क्रोध
लोभ
मोह
शक
उ
स्वार्थ
ईर्ष्या-द्वेष
दुःख-कलेश
कुठ्ठन

आदि अवगुणों का बोलबाला तथा आचरण प्रचलित है ।

यदि हम 'मायकी मंडल' में से निकल कर, 'आत्मिक मंडल' में प्रवेश करना चाहते हैं, तो हमें पिछले-पुराने 'जीवन-वेग' के हर पक्ष, अथवा –

रव्याल
चिंतन
निश्चय
जीवन लक्ष्य
रुचियां
ज्ञान
कर्म
स्वभाव
मनोरंजन

आदि बदलने पड़ेंगे तथा उनके -

‘ठीक विपरीत’

आत्म मंडल के दैवीय गुण धारण करने पड़ेंगे ।

ऐसे ‘मनमुख जीवन’ से ‘गुरुमुख जीवन’ की ओर ‘उल्ट परिवर्तन’ -

अलौकिक आत्मिक अकल कला है

आश्चर्यजनक इलाही करामात है

दैवीय करिश्मा है

‘जीवत-मरना’ है

आत्मिक रंग चढाना है

अंतर-आत्मा में ‘धर्म’ धारण करना है ।

जीवन में यह महत्त्वपूर्ण ‘उल्ट परिवर्तन’ लाने के लिए, सबसे पहला तथा ज़रूरी साधन, बरबो हुए गुरुमुख प्यारों की संगति अथवा ‘साध-संगति’ ही बतार्ई गई है -

खोजत खोजत सुनी इह सोइ ॥

साधसंगति बिनु तरिओ न कोइ ॥

(पृ: 373)

साधसंगति मिलि बुधि बिबेक ॥

(पृ: 377)

साधसंगति बिना भाउ नही ऊपजै

भाव बिनु भगति नही होइ तेरी ॥

(पृ: 694)

अन ते टूटीऐ रिख ते छूटीऐ ॥

मन हरि रस घूटीऐ संगि साधू उलटीऐ ॥

(पृ: 830)

संत जना की लेहु मते ॥

साधसंगि पावहु परम गते ॥

(पृ: 1136)

गुर परसादी जीवतु मरै उलटी होवै मति बदलाहु ॥

(पृ: 651)

अपने अन्दरूनी घोर अन्ध कूप के गहन अन्धकार की ठोकरों तथा भ्रातियों से दुखी होकर हम ‘अन्धकार’ से मुंह मोड़कर ‘प्रकाश’ की ओर भागते हैं ।

आग की प्रचण्ड लपटों से बचने के लिए भी हम उन से दूर भागते हैं तथा शीतलता ढूंढते हैं ।

ठीक इसी प्रकार जब 'जीव' मायकी मंडल के -

'अग्न शोक सागर' की लपटों
'आतिश दुनिया' की तपिश
'भीषण सागर' की डुबाने वाली लहरों
'माया नागिनी' के डक
'माया ठगनी' के 'नाटक'
'पाँच वाशनाओं की भगदड़'
'नरक घोर का द्वार'

से अत्यन्त दुखी होकर तंग आ जाता है, तो इस झूठी त्रि-गुणी माया की ओर 'पीठ' करके या उसे 'त्यागकर' आत्मिक मंडल अथवा 'परमार्थ' की ओर मुड़ता है तथा आत्मिक सुख-शांति की तलाश में निकलता है ।

हरि जन संत मिलहु मेरे भाई ॥

मेरा हरि प्रभु दसहु मै भुख लगाई ॥

(पृ: 95)

कोई सजणु संतु मिलै वडभागी मै हरि प्रभु पिआरा दसै जीउ ॥

हउ मनु तनु खोजी भालि भालाई ॥

किउ पिआरा प्रीतमु मिलै मेरी माई ॥

(पृ: 94)

बाहरमुखी मायकी मंडल से मुंह मोड़ना

तथा

आत्मिक मंडल की ओर रुख करना अथवा 'अंतरमुख' होना

ही जिज्ञासु का अनोखा 'विपरीत खेल' है, जिसे कोई विरला गुरमुख ही खेलता है । बाकी सारे जीव इस 'अग्नि शोक सागर' में ही -

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ॥

(पृ: 133)

अनुसार, अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ खो कर, यम के वश मे पड़कर, आवागमन के चक्कर में पड़े हुए हैं ।

हम गुरबाणी के उत्तम-श्रेष्ठ, पवित्र-पावन, सुखदायी, कल्याणकारी आत्मिक उपदेशों के गुप्त भेदों से अनजान, लापरवाह या जानबूझ कर मस्त हो कर, गुरबाणी के उपदेशों के 'ठीक विपरीत' जीवन व्यतीत कर रहे हैं ।

जानि बूझ कै बावरे तै काजु बिगारिओ ॥

पाप करत सकुचिओ नही नह गरबु निवारिओ ॥

(पृ: 727)

कबीर मनु जानै सभ बात जानत ही अउगनु करै ॥

काहे की कुसलात हाथि दीपु कूप परै ॥

(पृ: 1376)

गुरबाणी के उपदेशों से 'उलट' हमारे जीवन-वेग को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित तुलनात्मक वर्णन किया जाता है -

गुरबाणी का उपदेश

साचि नामि मेरा मनु लागा ॥
लोगन सिऊ मेरा ठाठा बागा ॥

अवरि काजि तैरे कितै न काम ॥
मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥

'फरीदा बुरे दा भला करि'
'गुसा मनि न हढाइ'

'ना को बैरी नही बिगाना'

'सगल संगि हम कऊ बनि आई'
'तजहु सिआनप सुरि जनहु'

'सिमरहु हरि हरि राइ'

'नाम बिना सभि कुडु गाली होछीआ'

'देरवी अनदेरवी करना'
स्वाद लेते हैं ।

'सुनी अनसुनी करना'
अंदर कुढ़ना तथा जलना ।

'रोसु न काहू संग करहु'

'निंदा भली किसै की नाही'

'हथहु दे कै भला मनावै'

हमारी क्रिया

माया में मन लगा हुआ है
परमार्थ में औपचारिक रूप से लगे
हुए हैं ।

दिन रात अवर काज में गलतान हैं
साध संगति करने की फुरसत या
आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती ।

भले के साथ बुरा करना ।
गुस्से में दिन-रात जल-भुन कर
कोयले बने हुए हैं ।

सभी बेगाने तथा दुश्मन बनाए
हुए हैं ।

किसी से नहीं बनती ।
सयानप दिरवाने में ही बड़प्पन तथा
शेखी समझते हैं ।

सिमरन की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत
होती ।

'नाम' की हमें सूझ ही नहीं तथा व्यर्थ
बातों में ही गलतान रहते हैं ।

अपितु मसाले लगाकर चर्चा करने में

सुनकर, बार-बार दोहराकर, अंदर ही

छोटी-छोटी बात पर गिले-शिकवे,
ईर्ष्या-द्वेष तथा वैर-विरोध बढ़ाना ।

निंदा में रस लेना ।

लेकर खुश होते हैं ।

सृष्टि के आरम्भ से ही अनेक गुरू, अवतार, संत, भक्त, इस 'विपरीत आत्मिक खेल' का उपदेश करते आये हैं। गुरबाणी भी यह पावन-पवित्र आत्मिक उपदेश दृढ़ करवाती है, परन्तु इस महत्वपूर्ण गुरू उपदेश को हम—

पढ़कर

सुनकर

गाकर

लिखकर

कथा-वार्ता करके

फिलास्फी घोट कर

वाद-विवाद

में ही, इन उपदेशों के 'ऊपर से गुजर' जाते हैं या फोकट दिमागी विचारों के 'शोर-गुल' में 'खो' देते हैं। जिस कारण इनके आन्तरिक अनुभवी आत्मिक 'तत्त विचार' से अनजान होकर, वंचित रहते हैं।

अज्ञानता के कारण, साधारण जनता तो मायकी मंडल में ही पलच-पलच कर घोर नरक भोग रही है। परन्तु अफसोस की बात तो यह है कि तथाकथित धार्मिक प्रचारकों ने भी गुरबाणी के इन उत्तम-श्रेष्ठ, पवित्र-पावन उपदेशों को कथनी-बदनी, फोकट ज्ञान तथा शुष्क फिलास्फी तक सीमित किया हुआ है।

पड़ि वादु वरवाणहि सिरि मारे जमकाला ॥

ततु न चीनहि बंनहि पंड पराला ॥

(पृ: 231)

पढत गुनत ऐसे सभ मारे किनहूं खबरि न जानी ॥

(पृ: 477)

कथनी बदनी करता फिरै हुकमै मूलि न बुझई अंधा कचु निकचु ॥

(पृ: 509)

पड़णा गुणणा संसार की कार है अंदरि त्रिसना विकारु ॥

(पृ: 650)

कथनी कहि भरमु न जाई ॥

सभ कथि कथि रही लुकाई ॥

(पृ: 655)

गुरबाणी में अनेक बार 'साकत' शब्द का प्रयोग हुआ है। जैसे पहले भी बताया जा चुका है कि 'साकत' वह है, जो परमात्मा के 'अस्तित्व' को नहीं मानता या परमात्मा को भूला हुआ है या 'ऊपरी मन' से ही हामी भरता है। इस प्रकार 'साकत जीव' अपने अहम्यसत 'अस्तित्व' को ही 'सच' मानते हैं तथा मैं-मेरी के आधार पर जीवन व्यतीत करते हैं।

साकत हरि रस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे ॥

(पृ: 13)

साकत मूड माया के बधिक विचि माया फिरहि फिरदे ॥ (पृ: 800)

साकत नर अंहकारी कहीअहि बिनु नावै धिगु जीवीजै ॥ (पृ: 1325½)

यदि ईमानदारी से अपने मन की हालत को, उपरोक्त गुरबाणी की पंक्तियों की कसौटी पर परखें, तो पता लगेगा कि बहुत से जीव 'साकत' की श्रेणी में ही गिने जा सकते हैं ।

आश्चर्य की बात यह है कि 'साकत' शब्द पढ़कर या सुनकर हम समझते हैं कि यह शब्द हम पर 'लागू' नहीं होता – किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रयोग किया गया होगा ।

ऐसा समझना ही, हमारे 'अहम्' की 'ढिठाई' या अहम्-ग्रस्त 'साकत' होने का प्रमाण है ।

यही कारण है कि इतने पाठ-पूजा, कथा-वार्ता तथा कर्म-क्रिया करते हुए तथा सुनते हुए भी, जीव मोह-माया में पलच-पलच कर नरक भोग रहे हैं ।

उपरोक्त विचारों से सिद्ध होता है कि गुरुमुख जनों की उत्तम-पवित्र आत्मिक अवस्था, 'साकत के जीवन' से –

भिन्न

विलक्षण

विपरीत

उल्ट

विरोधी है ।

इसलिए मन के बाहरमुखी 'जीवन-प्रवाह' को मायकी मंडल से –

रोक कर

मोड़ कर

बदल कर

पलट कर

आत्मिक मंडल की ओर 'उल्टाना' ही –

साकत सिउ करि उलटी रे ॥ (पृ: 535)

के उपदेश का अनुसरण करना है, तथा आत्मिक मंडल में प्रवेश करना है ।

गुरुमुखि होवै सु पलटिआ हरि राती साजि सीगारि ॥ (पृ: 785)

सम्पत्

k k k